अष्टम प्रकरण

ठाकुर और अन्य रीतिमुक्त कवि

प्रेम का आदर्श : शृंगारिकता रीतिकाल की प्रधान प्रवृत्ति थी । इस शृंगारिकता की व्याख्या विभिन्न लोगों ने विभिन्न प्रकार से की है । रीतिकाल की सामाजिक पृष्ठभूमि में उद्धृत बर्नियर का उद्धरण देखिए --

"आखिर जीवन को आत्मप्रकाश के लिए अभिव्यक्ति चाहिए । इस युग में यह अभिव्यक्ति केवल घर के भीतर ही सम्भव थी । जहां उनकी समस्त आकांक्षाएं नारी के शरीर के चारों ओर ही मंडरा सकती थी । पराभव के और भी युग भारतीय जीवन में आए पर उन सभी में काम की ऐसी सार्वभौम उपासना नहीं हुई । कारण यह था कि उन युगों में नैतिक आदर्श दृढ़ और कठोर थे , जो इस प्रवृत्ति के प्रतिकूल पड़ते थे । परन्तु रीतिकाल में कृष्ण भक्ति की परम्परा से नैतिक अनुमति एक प्रकार से इसे प्राप्त हो गई थी । अतएव अब किसी प्रकार के अप्राकृतिक संकोच अथवा दमन की आवश्यकता कभी नहीं पड़ी । काम की उपासना जीवन के स्वीकृत सत्य के रूप में होती थी । वातावरण के अतिरिक्त साहित्यिक परम्पराएं और प्रभाव भी इसके अनुकूल थे । फारसी संस्कृति और साहित्य की शृंगारिकता अब तक भारतीय संस्कृति में घुल मिलकर उसका एक अंग बन गई थी । वह नागरिकता का एक प्रधान अलंकार थी। अतएव इसका प्रभाव चेतन और अचेतन दोनों रूपों में हिन्दी कविता पर पड़रहा था। तीसरे संस्कृत और प्राकृत की जो परम्परा रीतिकाल को उत्तराधिकार में मिली वह भी एकान्त शृंगारिक ही थी[१] ।

उपर्युक्त उद्धरण पर विचार करते हुए नीचे लिखे हुए प्रश्न मन में उत्पन्न होते हैं --

---

१. डा० नगेन्द्र कृत 'रीतिकाव्य की भूमिका', पृ० १५८-५९

(१) काम की उपासना क्या जीवन का स्वीकृत सत्य नहीं है ?

(२) क्या रीतिकाल के काव्य गीत गोविन्द, आर्या सप्तशती, गाथा सप्तशती एवं अमरुक शतक से भी अधिक अश्लील हैं?

(३) क्या संभोग शृंगार के भीतर आलिंगन चुम्बन आदि का वर्णन वर्जित है ? संस्कृत के महाकवि कहे जाने वाले किसी कवि ने क्या ऐसा वर्णन नहीं किया है ?

(४) क्या कला का मूल्यांकन नैतिक नियमों से परे नहीं है ?

यदि इन सब प्रश्नों के उत्तर पर विचार करें तो यही कह सकते हैं कि रीतिकाल के कवियों को देखने के लिए उदार दृष्टि का सर्वथा अभाव रहा है । उनके शृंगार को वासना, उनकी भक्ति को भक्ति का आभास , उनके शब्द कौशल को कलाबाजी कहकर हम उन्हें लांछित करते रहे हैं । रीतिकाल के इन कवियों के शृंगार वर्णन में ऐन्द्रियता की प्रधानता है, भाव की नहीं -- इतना कह देना काफी है । नारी के शरीर के चारों ओर मंडराने वाले किस देश में नहीं हुए और किस साहित्य में नहीं हुए ?

डा० नगेन्द्र ने लिखा है -- "रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी, मतिराम, पद्माकर रसिक ही थे , प्रेमी नहीं । कहने की आवश्यकता नहीं कि इनकी रसिकता या सौन्दर्यभावना भी बहिरंग ही थी, अन्तरंग नहीं । इन रसिकों की दृष्टि प्रायः शरीर के ही सौन्दर्य पर भटकती रहती थी, मन के सूक्ष्म सौन्दर्य तक कम ही पहुंच पाती थी और आत्मा का तात्त्विक सौन्दर्य तो उसकी परिधि के बाहर था ही । अतएव इनकी सौन्दर्य भावना छायावाद की सौन्दर्य भावना के बिलकुल विपरीत विषयीगत न होकर विषयगत ही थी[१] ।"

लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि इस युग में कवियों का एक दल ऐसा भी था जो केवल रसिक नहीं था । सच्चा प्रेमी था । उसकी सौन्दर्य भावना बहिरंग नहीं थी, अन्तरंग थी । उसकी दृष्टि मन के सूक्ष्म सौन्दर्य तक पहुंचती थी । घनानन्द इस दल के प्रतिनिधि हैं । देखिये --

---

१. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १५८

अंग अंग तरंग उठै श्रुति की
परिहैं मनो रूप अबै घर [1] ।

स्वच्छन्दतावादी कवियों पर विचार करते हुए पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है--

"रीतिबद्ध कवि मे अधिकतर तो सौतों की असूया, मान के त्रिविध रूप, हावों की भावभंगी, खंडिता की व्यंग भरीउक्तियां ही हैं। विपरीत रति, सुरतांत आदि के बन्धे बंधाए और असंस्कृत वर्णनों से इनकी रचनाएं यदि भरी नहीं हैं तो शून्य भी नहीं हैं। वस्तुत: रीतिबद्ध कवि प्रेम मार्ग की वक्रता, उसकी चातुरी, उसके बुद्धि विशिष्ट रूप का ही संभार करते रहे। पर रीतिमुक्त कवियों ने स्पष्ट घोषणा की कि प्रेम का मार्ग सरल है। उसमें वक्रता का नाम नहीं। चतुराई का लेश भी इसमें घातक होगा [2] । देखिए --

अति सूधो सनेह को मारग है जहां नेकु सयानप बांक नहीं।
तहं सांचे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जो निसांक नहीं।।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनो, इत एक ते दूसरो आंक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं [3] ।।

प्रेम एक से होता है अनेक से नहीं। प्रेम में एकनिष्ठता आवश्यक है। रहीम के निम्नलिखित दोहे में यही संकेत है --

जिन नैनन प्रियतम बस्यो पर छवि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि पथिक आपु फिरि जाय।।

रीतिमुक्त कवियों के प्रेम की पहली विशेषता है --प्रेम की एकनिष्ठता। इस सम्बन्ध के ठाकुर के दो छन्द देखिए --

---

१. घनानन्द ग्रन्थावली, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
२. बिहारी, पृ० ३०,३१
३. घनानन्द ग्रन्थावली,

का करिए तुम्हरे मन को जिनकौ अबलौं न मिटो दगा दीबो ।
पै हम दूसरो रूप न देखि हैं आनन आन को नाम न लीबो ।।
ठाकुर एक सों भाव है जों लगि तो लगि देह धरे जग जीबो।
प्यारे सनेह निबाहिबे को हम तो अपनो सो कियो अरु कीबो।।[1]।।

धिक कान जो दूसरी बात सुनै अब एकहिं रंग रह्यो मिलि डोरो।
दूसरो नाम कुजात कहैं, रसना जों कहूं तो हलाहल बोरो।।
ठाकुर यों कहती व्रजबाल सो, इयां बनितान को भाव है भोरो।
ऊधो जू वे अंखियां जरि जांय जो सांवरो छाड़ि तकैं रंग गोरो[2]।।

रीतिमुक्त कवियों के प्रेम के आदर्श की दूसरी विशेषता है --प्रेम पंथ की कठोरता का निरूपण। प्रेम का अर्थ होता है विरही बनना और विरही बनने का अर्थ है घुल घुलकर मरना। रीतिबद्ध कवियों के यहां तो जल्दी विरह आता ही नहीं, लेकिन रीतिमुक्त कवियों के यहां संयोग में भी विरह का भय बना रहता है-

यह कैसो संयोग न सूझि परै
जु वियोग न क्यों हूं बिछोहत है[3]।

रीतिकाल के दूसरे रीतिमुक्त कवि बोधा ने भी प्रेम मार्ग की इसी कठोरता की ओर संकेत किया है। देखिये --

अति खीन मृनाल के तारहु ते, तेहि ऊपर पांव दै आवनो है।
सुई बेह के द्वार सकै न तहां परतीति को टांड़ो लदावनो है।।
कवि बोधा अनी घनी नेजहु तें चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है[4]।।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ५१
२. वही, छंद सं० १३८
३. घनानन्द ग्रंथावली, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
४. शुक्ल जी का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ३७१-७२

प्रियतम के चरण में लगने के लिए मेंहदी को शाखा (कुल) से अलग होना पड़ता है। दो पत्थरों के बीच रगड़ खाना पड़ता है । यह है प्रेम की सजा --

साखा कुल टूटें ह्वै रंगीली अभिलाषा भरी ।
परी है परवान बीच घसनि घनी सहै ।
सोच सूखी हतेमान आनिकैं सलिल बूड़े ।
घुरि जाय चाह निहि हाय गनि को कहै।।
तऊ दुखदाई देखौ छिदनि सलाकनि सों
प्रेम की परख देया कठिन महा अहै ।
पिय मनसा लौं वा री मिहदी अनंद घन
ए री जान प्यारी नेक पाइनं लग्यो चहै[1] ।।

अन्य रीतिमुक्त कवियों की भांति ठाकुर ने प्रेम पंथ की कठोरता का निरूपण किया है । प्रेम करना अपने हाथ में बिच्छू लेना है । अपने पैर में पत्थर बांधना है ।

१. ऊधो जू दोष तुम्हें न उन्हें हम लीन्हीं हैं आपने हाथ में बीछी[2] ।
२. ऊधौ जू दोष तुम्हें न उन्हे हम आपुही पांव में पाथर पारे[3] ।

रीतिमुक्त कवि के प्रेम के आदर्श की तीसरी विशेषता यह है कि ये कवि विरह के दु:ख से मरना नहीं चाहते । मरने पर ये विरह के दु:ख से वंचित हो जाएंगे जोकि इन्हे अभीष्ट नहीं है । घनानन्द ने मीन के प्रेम की निन्दा की है । मीन ने जल के विरह में प्राण त्याग दिया । प्राण त्याग देने में विरह का स्वाद कहां मिल पाता है ? इसीलिए ये कवि चाहते हैं कि जीवन भी रहे और विरह भी --

हीन भए जल मीन अधीन कहा कछु या अकुलानि समाने।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्राने।
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै जड़मीत के पानि परें को प्रमाने।
या मन की जु दसा घनआनन्द जीव की जीवनि जान ही जाने[4] ।।

---

१. घनानन्द ग्रन्थावली,
२. ठाकुर ठसक, छंद सं० १७६
३. वही , छंद सं० १८१
४. घनानन्द ग्रन्थावली

विरह भोग की यही भावना ठाकुर में भी मिलती है। देखिए --

झेलो वियोग के ये उफिला निकसे जिन रे जियरा हियरा तें।

इन कवियों के प्रेम की चौथी विशेषता यह है कि ये कवि आशावादी थे। अपने प्रेम की शक्ति पर इनको पुरा विश्वास था। प्रेम यदि सच्चा है तो प्रेमी अपने प्रिय को पाकर ही रहता है। यह एक सत्य है और अन्तःकरण का सत्य है। गोस्वामी जी ने इसी सत्य की ओर संकेत किया है --

जेहि के जेहि पै सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलै न कछु संदेहू[1]।।

निराशा की सीमा पर पहुंच कर भी प्रेमी निराश नहीं होता। वह अपने प्रेमी को द्रवित करने का संकल्प अब भी किए जा रहा है --

आसा गुन बांधि के भरोसो सिल धरि छाती
पूरे पनसिंधु मैं न बूड़त सकाय हौं।
दुख दव हिय जारि अंतर उदेग आंच
निरंतर रोम रोम त्रासनि तपायहौं।।
लाख लाख भांतिन को दुसह दसानि जानि
साहस सहारि सिर आरे लौं चलायहौं।
ऐसे घनआनन्द गही है टेक मन माहि
एरे निरदई तोहि दया उपजाय हौं[2]।।

कभी तो प्रेमी सुनेगा --

रुई दिए रहोगे कहां लौं बहराइबे की
कबहूं तौ मेरिए पुकार कान खोलिहौं[3]।

कवि बोधा में भी धैर्य कम नहीं है। प्रेम की पीर जितनी ही असाधारण है उतना ही असाधारण उनका धैर्य भी। देखिए --

---

१. रामचरितमानस, बाल काण्ड
२. घनानन्द ग्रन्थावली
३. वही

कबहूं मिलिबो कबहूं मिलिबो यह धीरज ही में धरिबो करै ।
मुख ते कढ़ि आवै गरे ते फिरै मन की मन ही में सिरैबो करै।।
कवि बोधा न चाह सरी कबहूं नित ही हरवा सो हिरैबो.करै।
कहते न बनै सहते ही बनै मन ही मन पीर पिरैबो . करै[1] ।।

प्रेम का मूल है विश्वास । उसी विश्वास के आलोक में प्रेमी अपने प्रिय को देखना चाहता है । ठाकुर के निम्नलिखित छंदों में यही भावना व्यक्त है --

काहे अरे मन साहस छांड़त काहे उदास ह्वै देह तजै हैं ।
वे सुख वे दुख आए चले गए एक सी रीति रही नहि रैहैं।।
ठाकुर काको भरोस करैं हम या जग जालन भूलि न जैहैं।
जाने संयोग में दीन्हो वियोग वियोग में सो का संयोग न दीहैं[2] ।।१।।

दिल सांचो लगै जेहि को जेहि सों तेहि को तितहीं पहुंचावत है।
वलि हंस चुनै मुक्ताहल को अरु चातक स्वाती को पावत है ।।
कवि ठाकुर यों निज भेद सुनो अरुझावत सो सुरझावत है ।
परमेसुर की परतीति यही मिल्यो चाहत ताहि मिलावत है[3] ।।

इन कवियों के प्रेम की पांचवीं विशेषता यह है कि ये आंसू की वर्षा करने वाले मेघ नहीं थे । आंसू गिराना आसान होता है पी जाना कठिन । ये रीति-मुक्त कवि आंसू पीने वाले थे । पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इनके सम्बन्ध में लिखा है -- 'रीतिमुक्त कवियों की अधिकतर उक्तियां स्वानुभूति निरूपिणी हैं । वेदना की विवृति के लिए उनके वर्णन रीतिबद्ध वर्णनों की भांति अनुमान के सहारे नाप-जोख करने नहीं जाते । ये विरही अपनी आग से स्वयं ही भस्म होते रहते हैं, दूसरों को राख नहीं करते[4] । ये विरही अपनी पीड़ा में डूबे हुए विरह का भोग मौन होकर

---

१. शुक्ल जी कृत हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३७२
२. ठाकुर ठसक, छंद सं० ७२
३. वही, छंद सं० ५४
४. बिहारी, पृ० ३२

भोगते थे। अपनी विरह कहानी किसी को नहीं सुनाते थे। सुनाने से उसका मूल्य घट जाता है। देखिए --

१. कहते न बने सहते ही बने मन ही मन पीर पिरैबो करै[1]।

२. जब ते बिछुरे कवि बोधा हितू तब ते उर दाह थिरातो नहीं।
हम कौन सों पीर कहैं अपनी दिलदार तो कोऊ दिखातो नहीं[2]।।

३. बिरही बिचारन की मौन में पुकार है[3]।

४. यह प्रेम कथा कहिबे की नहीं, कहनोई करो कोऊ मानत है।
पुनि ऊपरी धीर धरायो चहै तन रोग नहीं पहिचानत है।।
कहि ठाकुर जाहि लगै कसकै नहि सो कसकैं उर जानत है।
बिन आपने पाय बिवाई गए कोऊ पीर पराई न जानत है[4]।।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि इन रीतिमुक्त कवियों ने प्रेम की निष्कपटता एवं एकनिष्ठता पर बल दिया है। उस काल को कोरी रसिकता का काल कहकर लांछित करना उचित नहीं है।

नायिका भेद एवं नखशिख निरूपण

घनानन्द पर विचार करते हुए डा० गोपीनाथ जी तिवारी ने लिखा है -- "रीतिकाल की सबसे बड़ी देन है --नायिका वर्णन। हिन्दी साहित्य की यह अपनी अपूर्व वस्तु है जिस पर हिन्दी जगत् को गर्व है[5]।

नायिका भेद का मूल आधार मनोवैज्ञानिक है। मनुष्य के आकार प्रकार के ही अनुसार उसका स्वभाव भी होता है। कामशास्त्रियों ने नायिका भेद के इसी आधार कोग्रहण किया है। अवस्थानुकूल नायिका भेद करने का रहस्य यह है कि अवस्था के ही

---

१. शुक्ल जी का इतिहास, पृ० ३७२
२. अवन्तिका, जनवरी,१९५४,पृ० १५४
३. घनानन्द ग्रन्थावली
४. ठाकुर ठसक, छंद सं० १७६
५. साहित्य सरोवर, पृ० १४५

अनुसार स्त्री की भावनाओं में भी परिवर्तन होता रहता है। घर पर पति के उपस्थित रहने या न रहने का भी उसकी मनोदशा पर प्रभाव पड़ता है । लेकिन इन सब के बाद भी हिन्दी में नायिका भेद के कुछ स्थूल एवं अनावश्यक आधार उत्पन्न कर लिए गए। जाति देश या प्रान्त --नायिका भेद के ऐसे ही आधार हैं ।

सच बात तो यह है कि कोई भी देश हो ,.कोई भी प्रान्त हो, नायिका की भावनाएं एक सी होती हैं । अवस्था का , प्रियतम के सहवास या प्रवास का, प्रभाव पड़ सकता है किन्तु देश या जाति का प्रभाव नहीं होता । यह प्रभाव होता भी है तो बाह्य । उनके वस्त्र, आभूषण अलग अलग ढंग के हो सकते हैं लेकिन एक ही अवस्था या एक ही स्थिति की नायिकाओं के मनोभावों में भेद नहीं होगा।

इन रीतिमुक्त कवियों ने भी नायिका भेद के अनुसार वर्णन किया है । पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में --"रसखानि, आलम , ठाकुर , घनानन्द -- सबमें खंडिता की उक्तियां मिलती हैं"[१]। लेकिन इन रीतिमुक्त कवियों की खंडिताएं जीवन से आई हैं , शास्त्र से नहीं । ठाकुर के काव्य में खंडिता वर्णन का उदाहरण देखिए --

परिगे किधौं काहू कें पाले अरी गुरु लोगन के डर सों डरिगे।
दिन बूड़त ही तें किवारे लगे, मग हेरो न मेरी विथा हरिगे।।
कहि ठाकुर औघ हती दिन बूड़त आवन की री घरी घरिगे !
अधिरात भए हरि आए नहीं हमें ऊमर की सहिया करिगे [२] ।।

प्रोषितभर्तृका में ही विरह का सच्चा रूप मिलता है । इसीलिए रीतिमुक्त कवियों ने प्रोषितभर्तृका का वर्णन किया है । ठाकुर का वर्णन देखिए --

जा दिन जान लगे परदेस को रौंदि हियो छतिया पै गली करी।
औघ की आज बताइ दसा करि राखि गए फिर आस चली करी।।
ठाकुर आप महासुख लूटत, बावरी सी वृषभानु लली करी[३] ।
सोहत है तुमको सबही तु भले जु भले लला आजु भली करी ।।

---

१. बिहारी, पृ० ४६
२. ठाकुर ठसक,छंद सं० १६५
३. वही, छंद सं० ७५

रीतिमुक्त कवियों पर विचार करते हुए पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है -- इस प्रकार प्रेम के क्षेत्र में जहां तक हृदय का सम्बन्ध है, शृंगार काल में यह विषमता व्यापक हो गई। फिर भी रीतिबद्ध रचना में विषमता का बढ़ा चढ़ा रूप उतना नहीं है, पर स्वच्छन्द धारा के कवियों में यह पराकाष्ठा को पहुंचा हुआ है। निश्चय ही यह सूफी कवियों का प्रभाव है[1]। मिश्र जी के कहने का आशय यह है कि प्रेम वैषम्य को दिखलाने के लिए इन कवियों ने खंडिता का वर्णन किया है और यह प्रेम वैषम्य सूफी प्रभाव है।

इन रीतिमुक्त कवियों ने नखशिख वर्णन भी किया है। माननीय डा० गोपीनाथ तिवारी ने घनानन्द के नखशिख वर्णन पर विचार करते हुए लिखा है -- घनानन्द भी इस दौड़ में बहुत पीछे नहीं हैं। उन्होंने भी आंख, पीठ, उदर, कंठ, मुख केश इत्यादि का वर्णन चमत्कार प्रणाली पर किया है। एक छंद में कई अंगों का भी वर्णन किया है। अंग वर्णन में उरोजों को महत्व मिला है और घनानंद के कई छंदों में उरोज आ बैठा है[2]।

ठाकुर का रूप वर्णन संक्षिप्त है। उन्होंने नेत्र एवं कटाक्ष का ही विस्तृत वर्णन किया है। उक्त तिवारी जी के शब्दों मे -- घनानन्द ने अन्य रीतिकालीन कवियों की नाईं अपनी नायिका को वस्त्राभूषणों से सजाया है[3]। लेकिन ठाकुर ने नायिका के वस्त्रालंकार का वर्णन नहीं किया है।

शृंगार निरूपण : (१) पूर्वराग वर्णन -- ठाकुर की तरह पूर्वानुराग का विस्तृत एवं सूक्ष्म वर्णन किसी रीतिमुक्त कवि ने नहीं किया है। पूर्वानुराग के भीतर अनेक प्रसंगों की उद्भावना की गई है। प्रेमी बालिका ज्योतिषी से पूछती है कि कृष्ण भी मुझे चाहते हैं या नहीं ? दुःखी व्यक्ति ज्योतिष आदि के फेर में ज्यादा पड़ता है। मानव मन का यह एक सत्य है। यही बालिका अपने प्रेमी को कूएं पर खड़ा देखती है और तुरन्त घर चली जाती है। घर के सब घड़े भरे

---

१. बिहारी, पृ० ३५
२. साहित्य सरोवर, पृ० १४६
३. वही

हुए है। वह उदास होकर लौट आती है। पड़ोसी के घर जाती है और उसके घर का खाली घड़ा लेकर कुएं पर पहुंच जाती है। इतना काम कितनी शीघ्रता और किस उल्लास के साथ हुआ -- नहीं कहा जा सकता। पूर्वानुराग लोक मर्यादा को एक चुनौती है। देखिए --

अब गांवरे नांवरे कोऊ धरौ अब सांवरे रंग रंगी सो रंगी[1]।

किन्तु लोक मर्यादा को धक्का लगाके कोई सम्मान नहीं पा सका। सम्मान न पाना मृत्यु के तुल्य है। प्रेमी बालिका कहती है --

या जग पै फिर जीनो कहा जब आंगुरी लोग उठावन लागे[2]।

इस प्रकार लोकापवाद और मन की स्वच्छन्दता के बीच पूर्वानुराग पलता है। प्राय: लोग शृंगार के संयोग और वियोग -- दो पक्ष मानते हैं। पूर्वानुराग को भी वियोग के ही खाते में फेंक देते हैं। लेकिन संयोग और वियोग के पहले पूर्वानुराग की स्वतन्त्र स्थिति स्वीकार करनी चाहिए। ठाकुर के शृंगार की सबसे बड़ी विशेषता है उनका पूर्वानुराग वर्णन। घनानन्द के पूर्वानुराग वर्णन में वह अनेकरूपता एवं सजीवता नहीं है जो ठाकुर के वर्णन में है।

(२) संयोग शृंगार -- घनानन्द के संयोग वर्णन पर विचार करते हुए माननीय डा० गोपीनाथ तिवारी ने लिखा है -- "घनानन्द ने भी इन प्रसंगों को चाव से अपनाया है। नायिका एकान्त में बैठकर नायक की प्रतीक्षा कर रही है। नायक आता है और दोनों आलिंगन बद्ध हो जाते हैं। घनानन्द ने आलिंगन का वर्णन प्रचुरता से कई छंदों में नमक मिर्च मिलाकर किया है। चुम्बन और रदछद के साथ रति वर्णन के रंग को और गाढ़ा किया है। साथ ही नायक को रति प्रसंग में धीरज रखने की भी शिक्षा दी है। मद पीकर रति प्रसंग का भी वर्णन किया है। कहीं-कहीं नायिका को जवानी में कोकशास्त्र पढ़ने की सम्मति भी दी है। सुरतान्त का भी विशद चित्रण हुआ है[3]।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० १४६

२. वही, छंद सं० ४३

३. साहित्य सरोवर, पृ० १४४

ठाकुर का संयोग वर्णन इतना विस्तृत नहीं है। उनके संयोग वर्णन में नायक-नायिका के हृदयोल्लास का वर्णन है। होरी अखती आदि त्योहारों के अवसरों पर कुछ क्रीड़ाएं हो जाती हैं। होली के अवसर पर एक गोपी कृष्ण को लेकर केसर के कीच में गिर जाती है। दूसरी गोपी अपनी सखी से उलाहना देती है कि कृष्ण बड़े धृष्ट हैं। उन्होंने बलात् मुझे बाहु में बांध लिया। सखी कहती है कि इस अवसर पर आलिंगन दोष नहीं माना जाता है। होली खेलने वाले कुछ मनचले बालकों ने एक पनिहारिन का पीछा किया। उसने दौड़ कर किवाड़ बन्द कर ली। इस प्रकार हम देखते हैं कि ठाकुर के शृंगार वर्णन में उल्लास की प्रधानता है। ऐन्द्रियता की प्रधानता नहीं है।

(३) वियोग शृंगार -- रीतिमुक्त कवि अपने विरह वर्णन के लिए हिन्दी विरह काव्य में विख्यात हैं। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने ठाकुर के सम्बन्ध में लिखा है-- "रीतिकाल की बौद्धिक विरहानुभूति की निष्प्राणता और कुंठा के वातावरण में घनानन्द की पीड़ा की टीस सहसा ही हृदय को चीर देती है और मन सहज ही यह मान लेता है कि दूसरों के लिए विलाप पर आँसू बहाने वालों के बीच यह एक ऐसा कवि है जो सचमुच ही अपनी पीड़ा से रो रहा है[1]। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में "ये उड़ान भरने वाले पक्षी नहीं, वेदना की पुकार मचाने वाले पपीहे हैं[2]"।

घनानन्द और ठाकुर दोनों ने विरह के प्रभाव का वर्णन किया है। यदि घनानन्द ने विरोध मूलक वाक्यों एवं लाक्षणिक प्रयोगों में विरह का वर्णन किया है तो ठाकुर की लोकोक्तियों में उनकी विरह वेदना उभरी हुई है। देखिए --

घनानन्द - १. राग भरे हिय में विराग मुरझाति है[3]।

२. बूंद लगैं सब अंग दगैं उलटी गति आपने पापनि पेखी।
पौन सों जागति आग सुनी पै पानी तें लागति आगिन देखी[4]॥

---

१. अवन्तिका, जनवरी, १९५४, पृ० १५३

२. बिहारी, पृ० ३३

३. घनानन्द ग्रन्थावली,

४. वही

३. चाह के प्रवाह धंग्यो दारुन कलोल है[१]।।

ठाकुर - १. खाई कछू बगराई कछू हरि गोपी गुवाल की गांजर कीन्ही[२]।

२. मूसर चोट की भीति कहां वजिके जब मूंड़ दियो ओखरी में[३]।

घनानन्द और ठाकुर -- दोनों के विरह वर्णन में तीव्रता है। दोनों ने प्रकृति का उद्दीपनात्मक वर्णन किया है। हृदय के घावों का फूटना, कलेजे का टुकड़े-टुकड़े होना घनानन्द के विरह वर्णन में है किन्तु ठाकुर में नहीं। प्रिय की ओर से प्रेम न पा सकने के कारण घनानन्द भक्त हो गए। लेकिन अपनी प्रेयसी का नाम (सुजान) वह नहीं भूल सके। उसी सुजान शब्द का प्रयोग कृष्ण के लिए करने लगे। श्री रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में -- केवल अपनी प्रेमिका सुजान के लिए ही नहीं, भगवान के लिए भी घनानन्द के हृदय से जो पुकार निकली है, वह रीतिकाल के कवियों की भीड़ में नहीं, प्रत्युत कबीर, मीरा, रवीन्द्र और लेक की कविताओं में ही खप सकती है[४]। देखिए --

अंतर हौ किधौं अंत रहौ
दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं?
आगि जरौं अकि पानि परौं
अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं?
जौ घनआनन्द ऐसी रुची
तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं?
पाऊं कहां हरि हाय तुम्हें ?
धरनी में धंसौं कि अकासहिं चीरौं[५]?

---

१. घनानन्द ग्रंथावली,
२. ठाकुर ठसक, छंद सं० १५३
३. वही, छंद सं० १६०
४. अवन्तिका, जनवरी १९५४, पृ० १५३
५. घनानन्द ग्रन्थावली

मूल्यांकन : घनानन्द की तरह ठाकुर के काव्य में कोई आध्यात्मिक संकेत नहीं मिलता। उनके काव्य में स्त्री पुरुष के सम्बन्ध की ही प्रधानता है। घनानन्द की विरह वेदना अन्तर्मुखी है। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में -- "विरह के जो स्वर घनानन्द के हृदय से निकले हैं वे रीतिकाल तो क्या, सूर की कविता में भी दुर्लभता से पाये जाते हैं[१]।"

बोधा ने लौकिक प्रेम में आध्यात्मिक प्रेम का होना ही प्रेम का आदर्श माना है --

> होय मजाजी में जहां इश्क हकीकी खूब ।
> सो सांचो इजराज है, जो मेरा महबूब[२] ।।

बोधा सूफियों द्वारा अच्छी तरह प्रभावित है। पं० परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में -- "बोधा कवि का 'विरह वारीश' ग्रन्थ भारतीय पद्धति का ही अनुसरण करता प्रतीत होता है। किन्तु इश्क मजाजी तथा इश्क हकीकी की चर्चा छेड़कर तथा 'गुरु' को पथ प्रदर्शक बनाकर बोधा ने अपने को कुछ अंश तक सूफियों द्वारा प्रभावित होना भी बतला दिया है[३]।"

आलम की सबसे बड़ी कृति है --माधवानल कामकंदला। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार -- "माधवानल कामकंदला शुद्ध भारतीय प्रेम काव्यों की परम्परा में दिखाई पड़ती है[४]।" पं० परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में -- "प्रेम ही वस्तुत: इस कवि का प्रधान वर्ण्य विषय है और उसकी व्याख्या उसने अपनी सारी रचनाओं में बड़ी योग्यता से की है[५]।" देखिए --

> आलम ऐसी प्रीति पर सरबस दीजै वार ।
> गुप्त प्रगट अंखियन मिले दियें कपट पट डार[६] ।।

---

१. अवन्तिका, जनवरी १९५४, पृ० १५३
२. विरह वारीश, पृ० ४
३. मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियां तथा नव निबन्ध, पृ० १५२
४. बिहारी, पृ० ४४
५. म० शृं० प्र० तथा न०नि०, पृ० ५९
६. माधवानल कामकंदला,

गुप्त प्रकट-- सभी आंखों से प्रकट हो जाता है । प्रेम हो जाने पर कुरूप व्यक्ति भी सुन्दर मालूम पड़ने लगता है । कृष्ण का कालापन गोपियों की आंखों में गोरापन हो जाता है । देखिए --

कारो कान्ह कहत गंवारी ऐसी लागति है
मोहिं वाकी स्यामताई लागति उज्यारी है[१]।

अन्य रीतिमुक्त कवियों की भांति आलम ने भी विरह का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है --

अंसुवनि भीजे औ पसीजे त्यों त्यों छीजे बाल
तोने ऐसी लोनी देह लोन ज्यों गरति है[२]।

आलम का यह सवैया आज भी लाख प्रेमियों की जीभों के अग्र भाग पर है ।

जा थल कीन्हे बिहार अनेकन ता थल कांकरी बैठि चुन्यो करें।
जा रसना सों करी बहु बातनि ता रसना सों चरित्र गुन्यो करें।।
आलम जौन सों कुंजन में करी केलि तहां अब सीस धुन्यो करें ।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान्ह कहानी सुन्यो करें[३]।।

इस प्रकार विचार करते हुए स्पष्ट हुआ कि रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं घनानन्द और उनके अनुयायी हैं बोधा ठाकुर और आलम । घनानन्द और बोधा का प्रेम आगे चलकर ईश्वरोन्मुख हो गया है, लेकिन ठाकुर और आलम का प्रेम शुद्ध मानवीय प्रेम है । सच कहा जाय तो कहना पड़ेगा कि इन रीतिमुक्त कवियों का मूल्यांकन अभी तक हुआ ही नहीं । दिनकर ने ठीक लिखा है -- 'सच तो यह है कि आज के पाठकों की रुचि का ख्याल रक्खा जाय तो नए मूल्यांकन में अनुभूति की तीव्रता के कारण घनानन्द बोधा और ठाकुर तथा रसखान अपने वर्तमान पद से कहीं ऊंचे हो जाएंगे और केशव जैसे कवियों का स्थान बहुत नीचे चला जाएगा[४]'।

---

१. आलमकेलि, पृ० ७ , सं० लाला भगवानदीन

२. आलमकेलि, पृ० ४४

३. आलमकेलि, सं० लाला भगवानदीन

४. अवन्तिका, जनवरी १९५४, पृ० १४८

रीतिकाल के कवियों पर जितने लांछन लगाए जाते हैं उन सबको अपने आंसुओं से धोने वाले हैं -- ये रीतिमुक्त कवि । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें 'प्रेमोन्मत्त कवि' कहा है[1] ।

रीतिमुक्त काव्यधारा के सबसे बड़े कवि हैं -- घनानन्द । घनानन्द की सी सुहृत्त पुष्ट विरह वेदना किसी कवि में नहीं है । शृंगार के सब अवयवों का इतना पूर्ण वर्णन किसी रीतिमुक्त कवि में नहीं है । कलापक्ष की दृष्टि से भी घनानन्द कलाकार ठहरते हैं । छायावादी काव्यों के लाक्षणिक प्रयोगों का मूल घनानन्द में पाया जाता है । घनानन्द के सम्बन्ध में शुक्ल जी ने लिखा है -- 'घनानन्द की सी विशुद्ध सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है । विप्रलंभ शृंगार ही इन्होंने अधिकतर लिया है। ये वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं । 'प्रेम की पीर' ही लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ । प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ'[2]।
ठाकुर के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का विचार देखिए -- 'ठाकुर बहुत ही सच्ची उमंग के कवि थे । इनमें कृत्रिमता का लेश नहीं । न तो कहीं व्यर्थ का शब्दाडम्बर है न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरुद्ध भावों का उत्कर्ष । जैसे भावों का जिस ढंग से मनुष्य मात्र अनुभव करते हैं वैसे भावों को उसी ढंग से यह कवि अपनी स्वाभाविक भाषा में उतार देता है। बोलचाल की चलती भाषा में काव्य को ज्यों का त्यों सामने रख देना इस कवि का लक्ष्य रहा है'[3]।

ठाकुर की कविता में युग का चित्र है। नीति सम्बन्धी उक्तियां हैं । भक्ति के उद्गार हैं । लोकोक्तियों का उचित प्रयोग है । सबसे बड़ी बात है ठाकुर की सर्वभूत व्यापिनी सहानुभूति --

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२२

२. वही, पृ० ३२७

३. वही, पृ० ३८३

विधि के बनाए जीव जेते हैं जहां के तहां
खेलत फिरत तिन्हें खेलत फिरन देव[१]।

रीतिबद्ध कवियों को लक्षण ग्रन्थों की बंधी परम्पराओं में चलते देख , उनसे खीझने वाला पहला व्यक्ति है ठाकुर --

डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है[२]।

आलम और बोधा में विरह व्यंजना कम नहीं है। लेकिन उनमें ठाकुर की सी सहज अभिव्यक्ति नहीं है। ठाकुर की भाषा की सजता नहीं है। ठाकुर की हृदयमूलक लोकोक्तियां नहीं हैं। रीतिबद्ध कवियों को फटकारने वाला वह साहस नहीं है जो ठाकुर में है। अपने युग की कुप्रवृत्तियों पर खीझने का अवसर देने वाली वह संवेदना उनमें नहीं है जो ठाकुर में है। इस प्रकार बहुवस्तु स्पर्शिनी प्रतिभा का व्यक्ति इन रीतिमुक्तों में केवल एक है और वह है ठाकुर।

इति

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० २४
२. वही, छंद सं० १२